२

असोज शुक्ल ९, बुधवार, १४-१०-१९६४
श्री तारणस्वामी द्वारा रचित श्रावकाचार
गाथा-४३, ४४, ४५, ४९, ६०, प्रवचन - १९

यह एक तारणस्वामी रचित श्रावकाचार है। उसमें श्रावक का आचार क्या है? श्रावक का आचरण कैसा होता है, उसकी बात चलती है। समझ में आया? देखो, श्रावक किसको कहते हैं? सम्प्रदाय नहीं। वास्तविक वस्तु का स्वभाव सर्वज्ञ भगवान त्रिलोकनाथ जिनागम में जो वर्णन करते हैं, ऐसा वस्तु का स्वरूप परमात्मा है, ऐसा अन्तर अनुभव करे उसको श्रावक का आचार कहने में आता है। बाहर की क्रिया आदि हो, राग की मन्दता आदि हो, वह कोई श्रावकाचार नहीं है।

मुमुक्षु : व्यवहार आचार।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार है, उसको कोई परमार्थ नहीं है। यहाँ परमार्थ की बात चलती है। देखो!

कर्म अष्ट विनिर्मुक्तं, मुक्ति स्थानेय तिष्ठते।
सो अहं देह मध्येषु, यो जानाति सः पंडितः॥४३॥

मुमुक्षु : बहुत स्पष्ट है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, स्पष्ट है।

'**कर्म अष्ट विनिर्मुक्तं**'। आठ कर्म है, आठ कर्म जड़ मिट्टी। उसमें प्रकृति (होती है)। ज्ञानावरणी की पाँच, दर्शनावरणी की नौ, ऐसी बहुत प्रकृतियाँ हैं। एक-एक प्रकृति में अनन्त-अनन्त परमाणु का पिण्ड है, ऐसे आठ कर्म है, उसका यहाँ पहले थे, ऐसी प्रतीति करवायी है। पहले से आत्मा सिद्ध समान ही पर्याय में था, ऐसा नहीं है। समझ में

आया? पहले से अनादि से आत्मा आठ कर्म के सम्बन्ध बिना का था, ऐसा नहीं। अनादि से प्रत्येक आत्मा... अनन्त आत्मा हैं, तो आठ कर्म का निमित्त-नैमित्तिक उसको सम्बन्ध है।

कर्म से संसार नहीं, विकार नहीं, विकार से कर्म नहीं। परन्तु अपनी चीज़ कर्म कर्म में है और विकार विकार की पर्याय में है। ऐसा अनादि का निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। ऐसा स्वीकार किये बिना आठ कर्म का नाश और सिद्धपद की प्राप्ति होती नहीं। '**कर्म अष्ट विनिर्मुक्तं**' आठों कर्म से रहित। पहले सहित था। देखो! यहाँ श्रावकाचार की बात चलती है। नहीं तो गृहस्थाश्रम में तो बड़ा राज-पाट होता है, सब होता है। हो, वह कहाँ श्रावकपना है, उसमें कहाँ श्रावकपना रुक गया है?

श्रावक का आचार तो उसको कहते हैं कि अपना आत्मा, जैसे सिद्ध भगवान अष्ट कर्म से विनिर्मुक्त हैं और '**मुक्ति स्थानेय तिष्ठते**' सिद्धक्षेत्र में विराजमान हैं। है न? तो उतना सिद्ध किया कि सिद्धक्षेत्र है। वहाँ मुक्ति में परमात्मा अपने स्वरूप में विराजमान है। कोई कहे कि सब आत्मा एक ही है और मुक्ति यहीं हो जाएगी, ऐसी बात है नहीं। '**मुक्ति स्थानेय तिष्ठते**'। जैसा सिद्ध करने से क्षेत्र सिद्ध किया। पण्डितजी! एक तो आठ कर्म का सम्बन्ध था, अब तोड़कर अपने स्वभाव की पर्याय की प्राप्ति कर, '**मुक्ति स्थानेय तिष्ठते**' ऊर्ध्व लोक में तिष्ठ अर्थात् विराजमान है। उसके सिवाय दूसरा कहे कि सर्व व्यापक हो जाए, ऐसा हो जाए, वह आत्मा का या सिद्ध का या द्रव्य का कोई स्वरूप उसने जाना नहीं।

'**सो अहं देह मध्येषु**' दो पंक्ति में सिद्ध की बात कही। ऐसा ही '**अहं देह मध्येषु**' वह भी आकाश में है। यहाँ भी आकाश में है। समझ में आया? सब साथ में अनन्त परमाणु पुद्गल मध्य में है। यहाँ भी आत्मा शरीर, कर्म के मध्य में है। परन्तु है उससे भिन्न। समझ में आया?

मुमुक्षु : कब की बात है?

पूज्य गुरुदेवश्री : वर्तमान बात है। डालचन्दजी!

सम्यग्दृष्टि जीव अपने आत्मा को वर्तमान में '**सो अहं देह मध्येषु**' सर्वव्यापक आत्मा नहीं है, यह भी सिद्ध किया। '**देह मध्येषु**' देह में अन्दर है। अनन्त देह सबका

भिन्न-भिन्न है। कार्माण, तैजस, औदारिक आदि असंख्य शरीर है। मेरा यह देह है, ऐसा कहने में आता है, तो देह है। कार्मणशरीर अन्दर है, औदारिकशरीर है, तैजसशरीर है, सब है। ऐसी अस्ति प्रतीत करके मैं देह के अन्दर अहं सिद्ध समान मेरी चीज़ है। आकाश में, जैसे उस आकाश में भगवान वहाँ विराजते हैं, इस आकाश में मेरा परमात्मा मेरे स्वभाव में है। मैं तो बिल्कुल शुद्ध, राग-द्वेष के सिवाय और भेद बिना की अभेद चीज़, ऐसा मैं आत्मा हूँ, ऐसा जिसको सम्यग्दर्शन हो, उसका नाम श्रावकाचार कहने में आता है। डालचन्दजी! ये बाह्य क्रिया की, ऐसा किया, फलाना किया, दया पाली, व्रत किया वह श्रावकाचार है ही नहीं।

भगवान आत्मा अपना निज स्वरूप, सिद्धपद स्वरूप ही अपना स्वरूप है, अपने स्वभाव में और सिद्ध में, उनकी पर्याय प्रगट है, यहाँ प्रगट नहीं है, परन्तु स्वभाव तो मेरा ऐसा ही पूर्ण है। वर्तमान में मेरी विद्यमान शक्ति में मैं पूरा पूर्ण आठ कर्म से रहित, मलिनता से रहित, पूर्ण शुद्ध मैं देह में विराजमान ऐसा जो जानन .... '**यो जानाति**' ऐसे जो अनुभवता है। '**जानाति**' का अर्थ ये है। समझे? '**यो जानाति**' ऐसा मेरा आत्मा पर आत्मा से भिन्न, आठ कर्म से भिन्न (है)। यह बात उन्होंने बारम्बार बहुत ली है। कोई उसकी कीमत निकाल देते हैं। एक ही बात बारम्बार की है। लेकिन वह तो अध्यात्म की भावना में बारम्बार यह बात आती है। समझ में आया? आये। कहते हैं न, कितने ही पण्डित लोग कहते हैं। बारम्बार एक ही बात करते हैं, बारम्बार एक ही (बात करते हैं)। परन्तु एक ही पर्याय, अनादि काल से वही पर्याय प्रगट, प्रगट, प्रगट करती हुई चली आयी है। सिद्ध में भी एक समय में पर्याय अनन्त... अनन्त... अनन्त... वैसी ही चली आती है, तो उसमें पुनरुक्ति है? समझ में आया? पण्डितजी! श्रावकाचार आदि सबमें एक ही बात अनेक बार की है। परन्तु अध्यात्म सम्बन्धी साधारण बात में विस्तार नहीं आता। विस्तार तो बहुत गम्भीर अन्दर में गहराई में स्वाध्याय करने से आता है। यहाँ तो साधारण अध्यात्म की भावना है। उसमें गहराई की बात सामान्य क्या है, विशेष क्या है, अनन्त गुण क्या है, उसकी शक्ति की पर्याय कितनी है, उस पर्याय का अविभाग प्रतिच्छेद कितना है, वह बात उसमें नहीं आती। समझ में आया? वह तो यहाँ टूंकाण में... टूंकाण में क्या कहते हैं? संक्षेप में (करते हैं)।

'यो जानाति सः पंडितः।' दूसरा कोई ज्ञान नहीं हो, शास्त्र का भी ज्ञान नहीं हो। समझ में आया? दूसरा कोई नहीं हो, परन्तु ये मेरा आत्मा अन्तर में, जैसे मूँगफली में मूंगी पड़ी है, मूँगफली आदि, मूँगफली... ऐसे आत्मा शरीर की फली में और पुण्य-पाप के छिलके में, पुण्य-पाप के छिलके में, पुण्य-पाप का विकल्प दया, दान, ब्रह्मचर्य आदि पालने का विकल्प आदि सब छिलका है। उस छिलके के मध्य में मैं ही आत्मा पूर्ण शुद्ध सिद्ध समान हूँ, ऐसा जानता है। जानता का अर्थ—अनुभव करता है। जानता का अर्थ वह है। समझ में आया? ऐसा पहिचानता है। पहिचानता का अर्थ—अपनी ज्ञानपर्याय से पूर्णानन्द में एकाकारता से अनुभव आनन्द का करता है, वही आत्मा पण्डित कहने में आता है। कहो, समझ में आया? बाकी सब (थोथा है)। यहाँ तो भाई ने थोड़ा अर्थ किया है, जड़ है, मूर्ख है। ऐसा अर्थ किया है, हाँ! देखो! ... योगसार का .. जड़ कहा है। देखो! योगसार की गाथा है न? जो कोई आत्मा को नहीं पहचानता है, वह शास्त्र को पढ़ते हुए भी जड़ है। ... योगसार में। शास्त्र पढ़ते हुऐ भी... शास्त्र हाँ, दूसरा पढ़ना तो कहीं दूर रहा गया, अज्ञान है। परन्तु शास्त्र वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा का कहा हुआ, पढ़ते हुए भी ... जड़ जैसा (है)।

आत्मा आनन्दमूर्ति राग से, पुण्य से, विकार से, व्यवहार से भिन्न और देह से तो भिन्न है ही। अपना अन्दर आकाश में अपना सिद्ध स्वरूपी अपने में पूर्ण है। ऐसा अन्तर में अनुभव नहीं करता, उस शास्त्र के पढ़नेवाले को भी जड़ कहने में आया है। पण्डितजी! ये तारणस्वामी कहते हैं कि यह अनुभव करे वह पण्डित है, बाकी मूर्ख है। नथुलालजी समझ में आया कि नहीं? यह गृहस्थाश्रम की बात चलती है, हों! गृहस्थाश्रम में रहने पर भी, हजारों रानियों के संग में रहने पर भी, अरबों के व्यापार में रहते हैं, ऐसा दिखने पर भी जो कोई अन्दर आत्मा में ज्ञानानन्द सिद्ध समान मेरा स्वरूप है, मैं ही सिद्ध हूँ, ऐसा जानता है-अनुभवता है-उसको यहाँ पण्डित, ज्ञानी, तत्त्वज्ञानी, विचिक्षण, समझवान, उसको कहने में आता है। संसार के डहापण को उड़ा दिया। क्या कहते हैं? डहापण कहते हैं? चतुराई। संसार की चतुराई को उड़ा दी। शास्त्र की चतुराई भी काम नहीं करे। शास्त्र तो भिन्न है। शास्त्र कुछ जानता नहीं कि आत्मा क्या है। समझ में आया? समयसार में आयेगा, ... शास्त्र क्या जाने कि आत्मा क्या है। उसको कहाँ खबर है। ये तो पन्ने, पुस्तक पुद्गल

की पर्याय है। समझ में आया? शास्त्र में कहा हुआ भाव कि मेरा आत्मा सिद्ध समान है, ऐसा अनुभव दृष्टि में लेकर साथ में वेदन करता है, वही पण्डित और ज्ञानी कहने में आता है।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पाँचवाँ गुणस्थान और चौथे गुणस्थान में लागू पड़ता है। चौथा गुणस्थान और पंचम गुणस्थान को यह लागू पड़ता है। लागू पड़ता है, कहते हैं न? लागू पड़ता है। उसमें क्या है? गुजराती में लागू पड़ता है, ऐसा कहते हैं। अनुरूप होते हैं। चौथे, पाँचवें गुणस्थान को यह अनुरूप है। उसकी बात चलती है यहाँ। छट्ठे (गुणस्थान) मुनि की बात यहाँ नहीं है। उनकी दशा तो दूसरी है।

यहाँ तो अपना आत्मा 'सिद्ध समान सदा पद मेरो।' 'चेतन रूप अनूप अमूरत, सिद्ध समान सदा पद मेरो।' हो, शरीर हो, वाणी हो, कर्म हो, सब हो। मेरी चीज़ में वह नहीं, ऐसा विकल्प रहित अन्तर दृष्टि का अनुभव हो, उसका नाम ज्ञानी शास्त्रकार पण्डित कहते हैं। कहो, समझ में आया? उसमें तो उतने बोल लिये कि पहले आठ कर्म थे। अभी भी है, फिर भी मेरी चीज़ में नहीं है। मेरी पर्याय अल्पज्ञ और विकार है, फिर भी मेरी चीज़ में अल्पज्ञ और विकार नहीं है, और पर्याय में निर्विकार में पूर्णानन्द की पर्याय मैं सिद्ध समान हूँ, ऐसा अनुभव करके पर्याय में आनन्द की पर्याय प्रगट होती है। तो तीनों बोल आ गये। द्रव्य-वस्तु; गुण-शक्ति; उसमें ... ऐसी अन्तर्दृष्टि करने से पर्याय में-अवस्था में-हालत में-आनन्द का अनुभव हो, उसका नाम पर्याय-हालत कहते हैं। उसको पण्डित कहते हैं। समझ में आया? ४४।

परमानन्द सं दृष्टा, मुक्ति स्थानेय तिष्ठते।
सो अहं देह मध्येषु, सर्वज्ञं शास्वतं ध्रुव॥४४॥

पहले ऐसा लिया था, आठ कर्म से विनिर्मुक्त लिया था। और मुक्तिस्थान में तिष्ठते ऐसा लिया था। अब कर्म नहीं लेते हुए, '**परमानन्द सं दृष्टा**' ऐसा लिया है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बस, उस दशा की बात ली है। समझ में आया? क्या कहते हैं?

क्या कहते हैं ? ओहो.. ! **'परमानन्द सं दृष्टा'** परमानन्द का अनुभव करनेवाले सिद्ध भगवान। **'सं दृष्टा'** अर्थात् अनुभव करनेवाले। पहले में लिया था कि आठ कर्म रहित सिद्ध भगवान मुक्ति स्थान में तिष्ठते हैं, ऐसा लिया था। अब, अष्ट कर्म का अभाव होकर जो पर्याय उत्पन्न हुई, उसको यहाँ ली है। **'परमानन्द सं दृष्टा'** जो सिद्ध परमात्मा अपना अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव, **'सं दृष्टा'** नाम देखते हैं अर्थात् अनुभव करते हैं। देखते हैं अर्थात् अनुभव करते हैं परमानन्द का।

'मुक्ति स्थानेय तिष्ठते' मुक्ति स्थान में ऊर्ध्वलोक में विराजमान, ऐसे अनन्त सिद्ध विराजमान हैं। एक नहीं, अनन्त सिद्ध विराजमान (हैं)। अशरीरी, लोकाग्र शिखर पर, पीछे अलोक खाली है, लोक के अग्र (स्थान में विराजमान हैं)। चौदह ब्रह्माण्ड है, उसमें अग्र में अनन्त सिद्ध विराजमान (है)। परमानन्द का अनुभव करनेवाले जो वहाँ विराजमान हैं, **'सो अहं देह मध्येषु'** वही परमानन्द का अनुभव करनेवाला मैं ही आत्मा हूँ। मैं शरीर का अनुभव करनेवाला नहीं, राग-द्वेष का अनुभव करनेवाला नहीं। समझ में आया ? यह श्रावक की बात चलती है। ऐसा श्रावकपना ? व्यवहार कहते हैं। नाम क्या है ? श्रावकाचार नाम है। ये आचार है, दूसरा आचार क्या है ? भक्ति, पूजा, स्मरण आदि सब तो शुभराग है। वह वास्तविक श्रावकाचार है नहीं। वह व्यवहार आचार पुण्यबन्ध का कारण है। वह वास्तविक आचार है नहीं। डालचन्दजी !

परमानन्द का अनुभव करनेवाला, भगवान मुक्तिस्थान में मोक्ष क्षेत्र में विराजमान है। ऊपर है। वह भी सिद्ध किया। परमानन्द का अनुभव करते-करते विराजते कहाँ है ? ऊपर क्षेत्र में है। सर्व व्यापक हो जाये (ऐसा नहीं है)। कहते हैं न ? अनन्त में अनन्त मिल जाये ! मोक्ष होने के बाद भिन्न कहाँ रहना ? वहाँ भी चौका भिन्न ? सिद्ध में भी प्रत्येक आत्मा की सत्ता भिन्न ? भिन्न है। पण्डितजी ! सिद्ध भी प्रत्येक आत्मा भिन्न हैं। लोगों को जैन सर्वज्ञ परमात्मा क्या कहते हैं, खबर नहीं है आगम की और त्तव की, ... लगा दे। परमात्मा तो एक में अनन्त मिल जाए, सिद्ध होने के बाद भिन्न कहाँ है ? डालचन्दजी !

सिद्ध है या नहीं ? सिद्ध अनन्त हुए हैं या नहीं ? छह महीने और आठ समय में ६०८ मुक्ति में जाते हैं। वहाँ एक हो जाए। ज्योति में ज्योति मिल गयी। ऐसा है या नहीं ? ... ऐसा नहीं है, कहते हैं। अज्ञानी कहते हैं। मूढ़-तत्त्व के अनभिज्ञ कहते हैं कि सिद्ध में

ज्योत में ज्योत मिल गयी। फिर अलग कहाँ रहे ? क्या सत्ता यहाँ संसार में भिन्न थी ? संसार का नाश हुआ कि सत्ता का नाश हुआ ? मुक्ति में एक में दूसरा मिल जाए तो अपनी सत्ता का नाश हुआ। मुक्ति का अर्थ तो संसार का नाश होना। विकारी पर्याय का नाश होना, निर्विकारी परमानन्द का उत्पन्न होना। इसलिए वह शब्द लिया है, **'परमानन्द सं दृष्टा'** पण्डितजी ! तुम भी बराबर समझे बिना ऐसे ही चले हो। बराबर है या नहीं ? फुरसत नहीं मिलती, धन्धा-पानी... क्या कहते हैं, (समझने की फुरसत नहीं)। ओलम्भा है, पण्डितजी ! उसका कैसा अर्थ करना और... सामनेवाला कहे, सिद्ध में .. हाँ। सब एक ही हो जाते हैं, बराबर है। वहा भिन्न रहे तो राग हो जाए। अहंपना अलग रहे तो राग हो जाए। अरे.. ! सुन तो सही।

देखो ! **'अहं'** शब्द तो आया यहाँ। राग नहीं है। **'अहं देह मध्येषु'**, **'अहं देह मध्येषु'** अरे.. ! दूसरे से भिन्न करके अहं करना तो अभिमान है। ऐसा नहीं है, सुन तो सही, तुझे खबर नहीं। समझ में आया ? इसलिए शब्द रखा है। **'अहं'** मैं मेरा आत्मा **'अहं'** अनन्त आत्मा से भिन्न, अनन्त परमाणु से भिन्न। जैसे सिद्ध भगवान विराजते हैं ... के स्थान में, एक-एक सत्ता अपनी भिन्न, अनन्त सत्ता सिद्ध रखते हैं। ऐसा **'अहं'**। देखो ! दोनों में **'अहं'** शब्द पड़ा है न ? कोई ऐसी प्ररूपणा करते हैं कि अहं करने से तो उसमें अभिमान आ जाता है। इसलिए सब एक मैत्री का अर्थ क्या ? पण्डितजी ! विश्वमैत्री का अर्थ क्या ? उसे भी भान नहीं और सुननेवाले को भान नहीं। बराबर है। एक हो जाओ, एक हो जाओ। एक बिना निर्विकल्पता नहीं होती। ... होता है, अभिमान होता है। अपनी ...स्वतन्त्र मानने में अभिमान होता है। यहाँ तो तारणस्वामी कहते हैं, **'अहं मध्येषु'** अनुभव करने से आनन्द होता है। सेठ ! डालचन्दजी ! समझ में आया ? अहं मैं भिन्न हूँ। कर्म से, शरीर से, विकार से, अनन्त आत्मा से मेरी चीज़ अन्दर में अहं, देखो न ! शुद्ध जैसे सिद्ध हैं मुक्ति स्थान में, वह भी भिन्न-भिन्न अपनी सत्ता रखते हैं, ऐसे मैं भी मेरी सत्ता महा स्वभाव पर अनन्त आत्मा से, अरे.. ! अनन्त सिद्धों से और अरिहन्तों से, कर्म से, विकल्प से और मन से मेरी सत्ता अन्दर भिन्न (रखता हूँ)। अन्तर में ऐसा मानता है, अनुभवता है, जानता है। क्या कहा ? ... उसमें पण्डित किया था। ४३ में। **'यो जानाति स पंडिता'** दो शब्द में ... ऐसा लिया। यहाँ दूसरा लिया। हेतु है।

'सर्वज्ञं शास्वतं ध्रुव' मैं ही सर्वज्ञ शाश्वत ध्रुव हूँ। ... कठिन बात है। निवृत्ति लेकर थोड़ा अभ्यास करना चाहिए। बराबर है या नहीं? संसार का अभ्यास करते हैं, तो ये थोड़ा करना चाहिए या नहीं? हम तारण समाज में है। परन्तु तारणस्वामी क्या कहते हैं, (इसकी) खबर बिना तारणस्वामी कहाँ से आया? सेठ! **'सो अहं देह मध्येषु'** इतना भिन्न किया। परमानन्द पहले पर्याय में नहीं था, सिद्ध हुआ तब परमानन्द का पूर्ण अनुभव हो गया। और परमानन्द का अनुभव होने पर भी मुक्ति स्थान में अपना अस्तित्व भिन्न रखकर रहते हैं। **'तिष्ठते'।** अपना अस्तित्व भिन्न रखकर रहते हैं। किसी के अस्तित्व में मिल जाते नहीं।

'सो अहं देह मध्येषु' मैं भी भिन्न हूँ। ऐसा नहीं है कि सर्व एकाकार है। ऐसा बहुत लोग कहते हैं, ... गप्प मारते हैं और सुननेवाले को खबर नहीं। सब एक ही है, भैया! ऐसा अहं व्यक्तिपना अपना भिन्न करने से अभिमान आ जाता है। छोड़ दो अहंपना, एब एक है। मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? इसलिए तारणस्वामी कहते हैं कि **'सो अहं'** मैं मेरा आत्मा पर से भिन्न अनन्त गुण का पिण्ड मैं अकेला पर से भिन्न हूँ। यह श्रावक की बात करते हैं, हों! श्रावक के आचार की बात है। साधु की बात तो अलग है। बहुत अलग है।

'सर्वज्ञं शास्वतं ध्रुव' क्या कहते हैं? सर्व को जाननेवाला अविनाशी। मैं तो सर्व को जाननेवाला मैं ही आत्मा हूँ। सर्वज्ञ क्यों रखा? एक ही आत्मा हो तो सर्व को जाननेवाला नहीं रहता। अनन्त आत्मा हैं, अनन्त परमाणु हैं, छह द्रव्य हैं और अपना आत्मा पूर्णानन्द आदि-अनन्त गुण का पिण्ड है। सबको जाननेवाला मैं हूँ अन्दर में सर्वज्ञपद। समझ में आया? कितने ही कहते हैं, सर्वज्ञ तो पर को जाने। पर को जाने तो व्यभिचार हो जाए। पर को नहीं जाने और आत्मा को जाने तो छह द्रव्य है, उसे तो जानते नहीं। जानते नहीं, ऐसा कौन कहता है? तीन काल, तीन लोक के अनन्त द्रव्य, अनन्त गुण, अनन्ती पर्याय सर्वज्ञ अपनी एक समय की पर्याय में जानते हैं। अपनी पर्याय की पूर्णता की प्राप्ति को जानने से पर को जान लेते हैं। समझ में आया? वह सिद्ध करते हैं कि मेरा आत्मा ही सर्वज्ञ है। ऐसा है तो पर्याय में शक्ति में से व्यक्तता होगी। व्यक्तता समझे? प्रगट।

मैं ही सर्वज्ञं, सर्वज्ञं। मेरा अन्तर ज्ञानस्वभाव मेरे साथ अनन्त सर्व को जाननेवाली शक्ति मेरी आत्मा में पड़ी है। और ऐसा मैं वर्तमान सर्वज्ञपद का अनुभव करनेवाला हूँ। समझ में आया? आहाहा! एक-एक आत्मा सर्वज्ञ। ऐसे अनन्त आत्मा सर्वज्ञ। समझ में

आया ? एक घड़े के पानी में हजार घड़े का पानी समा जाता है ? एक आत्मा में सर्व ज्ञान समा जाता है ? ... एक घड़े का पानी है, उसमें हजार घड़े का पानी.. घड़ा समझते हो ? आ जाता है ? नहीं। तो एक सर्वज्ञ में क्या सर्व का ज्ञान आ जाता है ? नहीं। ऐसा नहीं है। सुन तो सही। ज्ञान तो सर्वज्ञ आत्मा में एक समय में तीन काल, तीन लोक, अनन्त आत्मा, अनन्त परमाणु भिन्न-भिन्न सत्ता का भान आत्मा सर्वज्ञ में कर सकता है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह किसकी बात चलती है ? ऐसा ही है, ऐसा है। पामर और अल्पज्ञ और राग और शरीरवाला मान रखा है, वह भ्रान्ति और भ्रम है। समझ में आया ? लाख, करोड़ आदमी हो... दृष्टान्त देते हैं सर्वज्ञ को उड़ानेवाला, सर्वज्ञ एक आत्मा ? सर्व, सर्व, तीन काल—तीन लोक, अनन्त द्रव्य, अनन्त गुण, अनन्त पर्याय, एक द्रव्य में अनन्त गुण हैं, एक-एक द्रव्य में, सबको जाने ? अनन्त पर्याय तीन काल की जाने ? एक घड़े में ... पानी नहीं रहता, ऐसे सर्व का ज्ञान नहीं होता। अरे.. ! सुन तो सही। ... समझ में आया है ? घड़ा तो स्थूल की बात करते हैं। ...

आत्मा ज्ञानानन्द है। सुनो ! ... ख्याल में आया या नहीं आत्मा ज्ञानानन्द है ? इतना ख्याल में आया है या नहीं, ... का भी आत्मा ज्ञानानन्द है, ऐसा ख्याल में सब आत्मा है, ये तो ख्याल में आता है या नहीं ? क्या कहा ? आत्मा ज्ञानानन्द है। कहते हैं, .. समा जाता है ? सुन तो सही। ... सच्चिदानन्द प्रभु, एक आत्मा मेरा पूर्ण आनन्द .. यह क्या ख्याल में नहीं आया ? सब प्राणी को वर्तमान में ऐसा ज्ञान ख्याल में आया है। करोड़ों मनुष्यों को ख्याल में आया कि आत्मा सर्वज्ञ है। ऐसा ज्ञान में सबको ख्याल आया है। ऐसा सबके ख्याल में आया या नहीं ? समझ में आया ? उसमें समाने की बात कहाँ है ? पानी का समाना और घड़े में समाने की बात (कहाँ) है ? कुतर्क करते (हैं)।

वह यहाँ कहते हैं, **'सर्वज्ञं शास्वतं'** शाश्वत नाम अविनाशी मेरा सर्वज्ञपद अन्दर में है। और अपने स्वभाव को ... ध्रुव। दो शब्द अन्दर पड़े हैं न ? शाश्वत और ध्रुव। मेरा सर्वज्ञस्वभाव तीन काल, तीन लोक देखे। मैं अकेला ज्ञान का मेरा स्वभाव। भिन्न आत्मा का भिन्न रहा। ऐसा मैं अविनाशी सर्व का जाननेवाला ज्ञान मेरे में है। दृष्टि पर से हट गयी,

अल्पज्ञ से हट गयी, सर्वज्ञ सत् शाश्वत अनिवासी पद मेरा और ध्रुव, उसमें स्थिर है। सर्वज्ञपद मेरे में स्थिर है। आहा! ऐसा सम्यग्दृष्टि श्रावक अनुभव करते हैं, उसको श्रावक का आचार कहने में आता है। समझ में आया?

यह षट्कर्म है, वह तो व्यवहार... देव, गुरु और ... आता है न? षट् कर्म। वह राग है। आता है जरूर, निश्चय से श्रावक का परमार्थ आचार वह नहीं। व्यवहार है, पुण्यबन्ध का कारण है। षट्कर्म आते हैं या नहीं? देवपूजा, गुरुसेवा, संयम, इन्द्रिय दमन, तप, दान। उसका विकल्प आता है। यहाँ तारणस्वामी ने उसको यथार्थ आचार में नहीं लिया है। उसको विकल्पात्मक व्यवहार आचार है सही। वह जाननेलायक है, अनुभवने लायक वह नहीं है। आता है, जब तक वीतराग नहीं हो तो श्रावक को भी विकल्परूप राग, भक्ति, इन्द्रिय दमन, इन्द्रिय निरोध आदि भाव होता है। स्वाध्याय करने का भाव होता है, परन्तु है वह शुभराग, है शुभ विकल्प। पुण्यबन्ध का कारण है; मोक्ष का कारण नहीं है। फिर भी आये बिना रहता नहीं। आने पर भी यथार्थ आचार तो उसको कहते हैं, अहो! विकल्प भी मैं नहीं, अल्पज्ञपना है वर्तमान विकासरूप, उतना भी मैं नहीं, अल्पदर्शीपना उतना भी मैं नहीं, अल्प वीर्यपना पर्याय में है, उतना नहीं। मैं तो सर्वज्ञ, उसके साथ सर्व वीर्य, उसके साथ पूर्ण आनन्द, उसके साथ पूर्ण दृष्टा, ऐसी शक्तिवान शाश्वत मेरा पद है। और वह ध्रुव अर्थात् स्थिर है। स्थिर है। वैसा का वैसा। समझ में आया? उसको जानना, उसका अनुभव करना।

अपनी देह के मध्य में है। देखो! '**देह मध्येषु**' आया न? '**सो अहं देह मध्येषु**' वह व्यवहार कहा है। मैं तो मेरे में हूँ। परन्तु यह क्षेत्र क्या है, यह बताने को '**देह मध्येषु**' कहा है। देह मध्य अर्थात् देह मध्य में आकाश बताना है न, यहाँ मैं हूँ, दूसरे में नहीं। उसको जानते हैं, वह श्रावक का आचार कहने में आता है। व्यवहार के पक्षकार को यह बात एकान्त लगती है। समझ में आया? अकेला व्यवहार का पक्ष करे, यह व्यवहार का आचार, यह व्यवहार का आचार। उसको यह बात एकान्त लगती है। एकान्त नहीं है। उसकी बात हो, सविकल्प का व्यवहार हो तो व्यवहार जाननेलायक उत्पन्न होता है। ऐसी बात बिना अकेला व्यवहार एकान्त व्यवहार मिथ्यादृष्टि का है। समझ में आया? मिथ्यादृष्टि का व्यवहार।

सम्यग्दृष्टि का व्यवहार, वह विकल्प हो, परन्तु वह बन्ध का कारण ज्ञानी जानते हैं, धर्म नहीं। धर्म का कारण वह विकल्प नहीं है। डालचनदजी! क्या करना? लोग (कहते हैं), व्यवहार का निषेध करते हैं, व्यवहार का लोप हो जाएगा, व्यवहार लोप हो जाएगा। सोनगढ़ की पद्धति स्वीकारते हैं तो व्यवहार का लोप हो जाएगा। कहते हैं या नहीं? यह स्वीकार करने से व्यवहार का लोप हो जाएगा। तारणस्वामी कहते हैं कि हम तो ऐसा श्रावकाचार कहते हैं। विकल्प को हम श्रावकाचार परमार्थ नहीं कहते। सुन तो सही। शुभराग व्यवहार होने पर भी व्यवहार आचरण है। वह वास्तव में परमार्थ आचरण, स्वभाव का आचरण नहीं।

स्वभाव का निर्विकल्प आचरण अपना स्वभाव शुद्ध ज्ञायक सर्वज्ञ शाश्वत स्थिर ध्रुव है, ऐसा अनुभव करना, प्रतीत करना, स्थिर होना, पर्याय में ... उसका नाम श्रावकाचार पर्याय में प्रगट हुआ है। श्रावकाचार पर्याय है। श्रावकाचार कोई द्रव्य-गुण नहीं है। समझ में आया? क्या है? श्रावकाचार पर्याय है। कैसी पर्याय को श्रावकाचार कहते हैं? ऐसा मैं शाश्वत सर्वज्ञ ध्रुव ... हूँ, ऐसा दृष्टि, ज्ञान और एकाग्रता हुई, उसको श्रावक का आचार कहते हैं। .... डालचन्दजी! ... नयी नहीं है। समझ में आया? ४५।

दर्शन ज्ञान संयुक्तं, चरणं वीर्य अनंतं।
अमूर्त ज्ञान संशुद्धं, देहे देवलि तिष्ठते॥४५॥

देखो! अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान सहित, अनन्त वीर्य और अनन्त वीतरागचारित्र सहित। '**चरणं**' है न? '**चरणं वीर्य अनंतं**' अनन्त का अर्थ है वीतरागचारित्र अन्दर आत्मा में पड़ा है। समझ में आया? मेरे आत्मा में बेहद अपरिमित, अनन्त दर्शन-दृष्टापना पड़ा है और अनन्त बेहद अचिन्त्य अपरिमित ज्ञानस्वभाव मेरे में पड़ा है। पर्याय ऐसा स्वीकार करती है। पर्याय को यहाँ श्रावकपना कहा है। पर्याय स्वीकार करती है त्रिकाल को। मैं अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, चरण अनन्त, दोनों को अनन्त कहा है न? चरण, वीर्य को अनन्त कहा है न? उसका अर्थ कि वीर्य अनन्त (है)। मेरे में बल-सामर्थ्य अपने शुद्ध स्वभाव की रचना करनेवाला मेरे में अनन्त वीर्य है। शुद्ध स्वभाव। पुण्य-पाप विकल्प की रचने-करनेवाला नहीं। समझ में आया? मेरा वीर्य कोई शरीर की क्रिया रचे, हिलावे,

करे—ऐसा है ही नहीं अपना वीर्य। समझ में आया? अपना वीर्य अनन्त, अपने अनन्त शुद्ध गुण की रचना पर्याय में करे ऐसा अनन्त वीर्य मेरे में पड़ा है।—बस।

और अनन्त चरणं। चारित्र अन्दर में वीतराग पर्याय। वीतरागी शक्ति का स्वरूप अस्तित्व मैं। मेरे अन्तर में वीतरागी चारित्र (पड़ा है)। स्वरूप चरणं पूर्णानन्द का आचरण, ऐसी पर्याय में; द्रव्य में, शक्ति में-गुण में पूर्ण चारित्र पड़ा है। अनन्त चारित्र पड़ा है। ऐसा अमूर्त। मैं अमूर्त हूँ। **'ज्ञान संशुद्धं'** और ज्ञानाकार परम शुद्ध देह। देखो! **'अमूर्त ज्ञान संशुद्धं'** ज्ञान निर्मलानन्द।

'देहे देवलि तिष्ठते' इस देहरूपी देव के मन्दिर में, इस देहरूपी मन्दिर में मैं तिष्ठता हूँ। समझ में आया? देहरूपी मन्दिर में विराजमान है। ऐसा अनुभव करते हैं। श्रद्धा करके ज्ञान करते हैं। अन्तर में पूर्ण आनन्द, ज्ञान, चतुष्टय आदि अनन्त पड़ा है, वह तो द्रव्यस्वभाव है, गुणस्वभाव है। उसकी पर्याय में आचरण अन्दर ... करते हैं, उस आचरण को श्रावकाचार मोक्ष का मार्ग की पर्याय उसको कहने में आती है। पहले तो अभी समझने का ठिकाना नहीं। उसे अन्दर में चीज़ क्या है... गड़बड़-गड़बड़ (करते हैं)। सबके साथ समन्वय करो। समन्वय समझते हो? मिलान। एब एक... हमारा भी है, ईश्वर है, हमारे परमेश्वर भी ऐसा कहते हैं, तुम भी ऐसा कहते हो। बात में अन्तर नहीं है। .. है। सर्वज्ञ के सिवाय.. समझ में आया? पर के साथ थोड़ा भी मिलान करना,.. पण्डितजी!

तारणस्वामी कहते हैं, खबर है? जनरंजन। जनरंजन के लिये ... स्त्री-पुत्र खुश होंगे। आहाहा! बड़ी बात, भाई! मूढ़ है। निगोद में जाएगा। किसकी प्रभावना? अधर्म की? प्रभावना अपनी पर्याय में होती है या बाहर होती है? प्र-भावना। प्र-विशेष भावना। अपने शुद्ध ध्रुव स्वभाव की एकाग्रता, वह प्रभावना है। समझ में आया? दूसरे को रंजन करने को.. सबको ऐसा लगे, साधारण समाज... ओहोहो! क्या बात करते हैं! जनरंजन, जिनरंजन नहीं। जिनउक्तं नहीं, जनउक्तं, ऐसा शब्द भी अन्दर आता है। जिनयुक्त नहीं, जनयुक्त। आता है न? भजन में आता है। ... आता है या नहीं? ममल पाहुड़ में आता है। सब देख लिया, एक महीने में पूरा-पूरा देख लिया। ... मिलान नहीं होता, बहुत विरुद्ध है। ... तारणस्वामी के नाम का बनाया है। उसके साथ मिलान नहीं होता। .. समझ में आया?

अभी एक महीने में सब बारह देख लिये। ... बनाया ... थोड़ा-थोड़ा बारह में से ले लिया है। कोई सार-सार गाथा हो न। समझ में आया? क्या कहते हैं? देखो!

जनगण बावला। अरे..! जनसमूह तो मूर्ख है। बावला है। आता है या नहीं भजन? ... समझ में आया? ज्ञान तो ज्ञान मेरा है। ओहो! राग की क्रिया से मेरा सम्बन्ध नहीं। देह की क्रिया से तो सम्बन्ध ही क्या है? दो आत्मा एक, उसका तीन काल में मिलान है नहीं। ऐसा ज्ञानी अन्तर ज्ञानस्वभाव.. कहा न? '**ज्ञान संसुद्धं**' है? मेरा ज्ञानाकार परम शुद्ध स्वभाव। वीतराग मेरा त्रिकाल स्वभाव। अभी पर्याय में भले वीतराग न हो, पर्याय में वीतराग हो तो केवलज्ञान हो जाए। समझ में आया? परन्तु द्रव्य-गुण में वीतराग चारित्र भरा है। समस्वभावी चारित्र, समस्वभावी चारित्र। यथाख्यात शुद्ध चारित्र अन्दर। साक्षात् अन्दर पड़ा है। ध्रुव स्थिर। ऐसा आत्मा मैं देहरूपी देवल में विराजमान हूँ। कहो, समझ में आया? वह तो व्यवहार भगवान है। भगवान वहाँ नहीं, भगवान यहाँ है। समझ में आया? '**देहे देवलि तिष्ठते**' ४९। कोई-कोई गाथा भिन्न-भिन्न लिखी है। .... ४९।

विज्ञानं जो विजानन्ते, अप्पा पर परिक्षया।
परिचये अप्प सद्भाव, अन्तर आत्मा परिक्षयेत्॥४९॥

देखो! यह शब्द। जो कोई आत्मा और पर। है न? देखो! '**अप्पा पर**' दो शब्द पड़े हैं, दूसरे पद में। '**अप्पा पर**' दो सिद्ध किया। एक ही आत्मा है और अकेला पर ही है, ऐसा नहीं। दो ही है, अनादि दोनों ही है। '**अप्पा**' अपना आत्मा। और '**पर**' अनन्त आत्मा। '**पर**' अनन्त परमाणु, '**पर**' अनन्त निगोद के जीव, छह द्रव्य। मेरे से छह द्रव्य अन्य-पर-भिन्न हैं।

'**अप्पा पर परिक्षया**' आत्मा और पर की परीक्षा करके। देखो! परीक्षा करके। ऐसे ही मूढ़पने जान ले, माने ऐसा नहीं। कसौटी (पत्थर पर) सुवर्ण की परीक्षा करता है या नहीं? सोलह वाल है, पन्द्रह बाल है, ऐसा कहते हैं या नहीं? हमारे में सोलह वाल कहते हैं। पूर्ण होता है न? सौ टंच का सोना। पन्द्रह वाल है, भैया! एक अंश उसमें ... का मिला हुआ है। अकेला सोलह वाल। ऐसे अपना आत्मा और पर की परीक्षा करनी चाहिए। परीक्षा किये बिना मानना वह मूढ़ दृष्टि है। है? पण्डितजी! परीक्षा करना। भगवान जाने कौन.. भगवान ने परीक्षा की।

मुमुक्षु : भगवान कहे वह सत्य।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु सत्य तुझे निश्चित हुए बिना, परीक्षा किये बिना भगवान कहे वह सत्य, कहाँ से आया? परीक्षा कर। समझ में आया? मेरा आत्मा प्रत्यक्ष मेरे शरीर प्रमाण भिन्न है। देह में तिष्ठते आया है। शरीर प्रमाण मेरा आकार है। देह मध्ये कहा है न सबमें? शरीर प्रमाण मेरा आकार है। मेरा आकार कोई सर्व व्यापक (नहीं है)। सर्व में चला गया नहीं। क्यों? कि जब मैं अन्दर में एकाग्र होता हूँ तो इतने क्षेत्र में एकाग्र होता हूँ। एकाग्र होने में बाहर जाना पड़ता है, ऐसा नहीं। समझ में आया? पण्डितजी! देह मध्ये कहा है न? तो मेरा आकार उतना नहीं है, आकार असंख्य प्रदेश का। इतने में एकाग्र होता हूँ तो मेरा पता लगता है। ऐसे (बाहर में) एकाग्र होऊँ तो पता लगता है, ऐसा नहीं। क्योंकि मैं बाहर में नहीं हूँ। समझ में आया? मैं इतने में हूँ। देह मध्य में बिल्कुल असंख्य प्रदेश आकार (है)। भले असंख्य प्रदेश खबर नहीं हो, लेकिन इतने आकार में अपने अवगाहन में मेरा अनन्त गुण का पिण्ड इतने में है। दूसरे के साथ मिलाऊँ और दूसरे में व्यापक हो और दृष्टि ऐसे करे तो ... सब मिल जाओ, भैया! प्रकाश में प्रकाश है।.... स्थानकवासी है न? गये थे। जैन की श्रद्धा नहीं थी। बस, अनन्त में मिल गया। आत्मा प्रकाश हुआ, वह प्रकाश दूसरा अनन्त प्रकाश है तो मिल गया अन्दर में। ऐसा नहीं है। झूठ-मूठ की कल्पना अज्ञानी की है। समझ में आया?

अपना देह। अपनी पर्याय अपने में एकाग्र इतने क्षेत्र में ही होती है। उसी क्षेत्र में अनन्त गुण पड़े हैं। कोई गुण बाहर में है नहीं। क्षेत्र का निश्चित होना, द्रव्य का निश्चित होना, गुण का निश्चित होना, प्रगट पर्याय का होना। ... परीक्षा करके करना चाहिए। मगनभाई! समझ में आया? **'विज्ञानं जो विजानन्ते'** जो कोई दोनों के विशेष ज्ञान को भेदविज्ञान को विशेष सूक्ष्मता से जानते हैं,.. देखो! शब्द पड़ा है न? **'विज्ञानं जो विजानन्ते'**। **'अप्पा पर'** अपना ज्ञान अतीन्द्रिय सूक्ष्म। जैसा द्रव्य है, जैसा गुण है, जैसी पर्याय है। और विकार भी कैसे उत्पन्न हो और भिन्नता अन्दर में कैसी है, ऐसी **'अप्पा'**-अपनी परीक्षा करना, पर की परीक्षा करना। विकल्प की, कर्म की, शरीर की, दूसरे सिद्धों की, सिद्ध क्या है, अरिहन्त क्या है, परमेष्ठी क्या है, दूसरा निगोद का आत्मा कैसा, कहाँ है अनन्त और परमाणु, अनन्त पुद्गलों में परमाणु क्या, उसका गुण क्या, उसकी पर्याय स्वतन्त्र क्या,

'**अप्पा पर**' की परीक्षा करके, दोनों के विशेष ज्ञान को। विज्ञान है न? विज्ञान। अर्थात् विशेष ज्ञानकर। भेदविज्ञान को '**अप्पा पर**' की परीक्षा करके भेदविज्ञान को। ऐसा शब्द पड़ा है। भेदविज्ञान एक में नहीं होता। भेदविज्ञान कहता है, अनन्त परपदार्थ में मेरा अकेला मेरा भिन्न आत्मा (है)। समझ में आया?

शास्त्र में आता है न? '**उदयति न नयश्रीरस्तमेति प्रमाणं**' अनुभव होने में नय उदय नहीं होते। निक्षेप नहीं होता है, और प्रमाण नहीं होता। बस, वेदान्त कहे, हमारा अद्वैत आ गया। कहाँ आया? सुन तो सही। समयसार की १३ वीं गाथा है, उसमें आता है। '**उदयति न नयश्रीरस्तमेति प्रमाणं**' देखो! नय भी विलय हो जाता है, निक्षेप भी विलय हो जाता है, प्रमाण भी विलय हो जाता है। समयसार में श्लोक है। फिर क्या रहा? अकेला अद्वैत रहा। परन्तु अद्वैत कौन? मेरा आत्मा अद्वैत। समझ में आया? नय, निक्षेप का विकल्प से ज्ञान किया था, ... अन्तर्दृष्टि करने से विकल्प (चले गये)। वस्तु दूसरी चली जाती है और पर से मैं भिन्न हूँ, उसमें मिल जाता है, पर के साथ, ऐसा कभी होता नहीं। समझ में आया?

'**अप्पा पर परिक्षया**' '**विज्ञानं जो विजानन्ते**'। '**विजानन्ते**' शब्द तो यह है, '**विज्ञानं जो विजानन्ते**' विशेषपने सूक्ष्म बुद्धि से जानता है। सूक्ष्म बुद्धि से, सूक्ष्म तर्क से, सूक्ष्म न्याय से। यह कभी पढ़ा है?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... पैसे की धूल की? दलाल है। यह पूँजी क्या है? ... '**अप्पा पर**' दो आया या नहीं? यह श्रावक को कहते हैं कि कोई मुनि को कहते हैं? श्रावकाचार। '**अप्पा पर परिक्षया**' अपनी और पर की परीक्षा करके विशेष जानकर, सूक्ष्म विशेष जानना, सूक्ष्मता से जानना। '**विजानन्ते**' शब्द पड़ा है न? सूक्ष्मपने जानना। स्थूलपने नहीं। सूक्ष्मपने सूक्ष्म बुद्धि। वीतराग मार्ग सूक्ष्म बुद्धि का है। श्रीमद् कहते हैं न? सूक्ष्म बुद्धि से वीतराग का धर्म प्राप्त होता है। सूक्ष्म बोध का अभिलाषी, ऐसा आता है न? सदैव सूक्ष्म बोध का अभिलाषी। वीतराग मार्ग को प्राप्त करने का पात्र है। सदैव सूक्ष्म बोध का अभिलाषी। आहाहा! श्रीमद् कहते हैं। भगवान त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमात्मा वीर जिनेश्वर के मार्ग का पात्र जीव कैसा होता है? सदैव सूक्ष्म बोध का अभिलाषी।

अहो! चैतन्य अतीन्द्रिय कैसा है? राग कैसा है? पर कैसा है? सबको परीक्षा करके... समझ में आया? विशेष सूक्ष्मता से तथा '**अप्प सद्भाव**' आत्मा की सत्ता और उसके स्वभाव का। देखो! शब्द लेते हैं। '**परिक्षये**' शब्द पड़ा है। तीन शब्द पड़े हैं उसमें। परिच्छया दो शब्द और परिच्छये तीसरा शब्द। कहते हैं, अपना आत्मा शुद्ध परमानन्द की मूर्ति कैसी है, यह सूक्ष्म बोध से समझना और पर का विकल्प, राग, देह, वाणी सबका अस्तित्व है। उसको सूक्ष्म बोध से समझना। समझकर भेदकर '**परिचये अप्प सद्भाव**' फिर पर का परिचय नहीं करना है, जानने में है। समझ में आया? परिचय अपना करना है। '**परिच्छये अप्प सद्भाव**' आत्मा का सत्तारूप शुद्ध स्वभाव अनन्त गुण का पुंज प्रभु एक, उसका परिचय करना। उसका परिचय कहो, संग कहो, अनुभव कहो, एकाग्रता कहो, शान्तरस के वेदन में एकाकार हो जाना कहो। यह आत्मा का सद्भाव का परिचय है। संग किया, संग। अनादि से असंग पदार्थ का संग छोड़कर, पुण्य-पाप के संग में, निमित्त के संग में रुका था। समझ में आया?

आत्मा के सत्ता और सुखस्वभाव का परिचय चाहता है। देखो! परिचय।... आत्मा का परिचय। पण्डितजी! तारणस्वामी ने कैसा शब्द (रखा है)। एक गाथा में तीन बोल रखे हैं। पहला '**अप्पा पर परिक्षया**' (दूसरा) '**परिच्छये अप्प सद्भाव**'। समझ में आया? तब '**अंतर आत्मा परिक्षयेत्**'। वही अन्तरात्मा है। ऐसा परिच्छये अर्थात् पहिचानना चाहिए। अन्तरात्मा की पहिचान है। अन्तरात्मा कहो, श्रावकाचार कहो, समकित कहो, निश्चय सम्यग्ज्ञान कहो। समझ में आया? '**परिच्छये अप्प सद्भाव**'। अपना और पर का सूक्ष्म बोध का भेद होने से, पर से हटकर... ज्ञान किया, परन्तु पर से हटकर अपना पूर्ण ज्ञायकभाव, उसका परिचय पाता है अथवा उसका पता पाता है कि क्या चीज़ है। अन्तर में एकाग्र होता है कि यह आत्मा शुद्ध है। पूर्ण आनन्दघन है, ऐसा ज्ञानी अन्तरात्मा चौथे गुणस्थानवाला या पंचम गुणस्थानवाला परिचय पाता है। वही अन्तरात्मा है। देखो! अन्तरात्मा। यहाँ तो अभी चौथे, पाँचवें गुणस्थान की बात करते हैं श्रावकाचार में।

पुण्य-पाप, शुभाशुभ भाव की एकाग्रता परिचय पाता है, वह मिथ्यादृष्टि बहिरात्मा है। बहिरात्मा है। जो अन्दर में नहीं है, उसका परिचय पाया। अन्दर में तो अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द है। विकल्प उठते हैं, दया, दान का विकल्प आदि शुभभाव, उसका परिचय

पाकर एकाग्र है, वह बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि मूढ है। समझ में आया? और अन्तर स्वभाव का परिचय पाता है, वह अन्तरात्मा '**परिचये**' कहते हैं कि परीक्षा करके जानना कि ऐसा अन्तरात्मा होता है। ऐसे अन्तरात्मा की परीक्षा करना। देखो! परीक्षा करना, परीक्षा करना ऐसा लेते हैं। समझे बिना जानने में आता नहीं। भगवान कहते हैं, ... होगा। तारणस्वामी कहते हैं, क्या कहते हैं यह तो तुझे खबर नहीं, कहाँ से आया तेरे पास.. ? समझ में आया?

कहते हैं कि परिचय तेरा स्वभाव और पर का भेद करके, तेरे में संग करना भगवान का। पर का संग छोड़ देना। विकल्प का भी संग छोड़ देना। स्व का परिचय करना। ऐसा अनुभव होना, उसका नाम श्रावक आचार कहने में आता है। आहाहा! बड़ी बात, भाई! समझ में आया? ४९ (गाथा) हुई। अब ६०। ...

अदेवं देव उक्तं च, अंधं अंधेन दृस्यते।
मार्गे किं प्रवेसं च, अंध कूपं पतंति ये॥६०॥

परीक्षा नहीं, भान नहीं, स्व-पर की खबर नहीं। समझे? '**अदेवं देव उक्तं**' अदेव को देव मानते हैं। सर्वज्ञपद के देव क्या है? अनन्त आनन्द पद क्या है? पूर्णानन्द वीर्य क्या है? खबर नहीं। और साधारण जन कोई ब्रह्मा, विष्णु, फलाना, ढिकना बात करनेवाला निकले कि ये एक देव है। समझ में आया? '**अदेवं देव उक्तं च**' ... ऐसा माने। समझे?...

'**अंध अंधेन दृस्यते**' अन्धे को अन्धे द्वारा मार्ग दिखाया जावे। सर्वज्ञ भगवान ने आत्मा, परमात्मा, पर, स्व, अनन्त द्रव्य, गुण, पर्याय क्या, खबर नहीं। अन्धा कथन करता है, अन्ध कथन करे और अन्धा उसको माने। कड़क भाषा है। करुणा की भाषा है। क्या? करुणा (है)। प्रभु! तुमको दिखानेवाला अन्धा और तू सुननेवाला अन्धा, कहाँ जाएगा तू? गड्ढे में जाएगा। कूप में जाएगा, ऐसा यहाँ कहते हैं। तुझे खबर नहीं,... देखो! '**अंधं अंधेन दृष्टाते। मार्ग किं प्रवेसं च**' मार्ग दिखाया जावे, किस तरह मार्ग में प्रवेश हो सकेगा? अन्धा मार्ग बतावे कि ऐसे जाना, ऐसे जाना। कैसे माने क्या? ऐसे जाओ, ऐसे जाओ। परन्तु कहाँ? अन्धे को सब ऐसा-ऐसा है। ऐसे दिखानेवाला अन्धा। ऐसा करो, ऐसा करो। प्राणायाम करो, ऐसा करो। कहनेवाला अन्धा। अरे..! वह तो राग की क्रिया है। ऐसा करो,

प्राणायाम करना, फिर ऐसा करना, फिर आसन लगा देना। वह तो जड़ की पर्याय है, क्या लगाये ? समझ में आया ? और ऐसी दया पालो, ऐसी भक्ति करो, ऐसे उपवास करो, ऐसा यह करो, यह करते-करते तुम्हारा कल्याण हो जाएगा। ... '**अदेवं देव उक्तं**' देव की वाणी और देव को मानते नहीं, समझते नहीं। '**अंध अंधेन दृष्टते। अंध कूपं पतति ये।**' अन्धे कूप में। देखो ! अकेला कूप नहीं लिया है। अन्ध कूप में। कुएँ में अन्धेरा है न। ... कुँआ भी अन्धा लिया है। ... चौरासी में गिरेगा, अन्धा है, तेरा पता नहीं खायेगा।

सर्वज्ञ भगवान परमेश्वर त्रिलोकनाथ, जिसने छह द्रव्य, पंचास्तिकाय, नौ तत्त्व आदि, पर आदि और स्व तेरा पूर्ण स्वरूप, उसकी परीक्षा करके अन्तर्दृष्टि, अनुभव नहीं किया और अज्ञानी ने कहा ऐसे मार्ग पर चला। दोनों अंधे कूप में '**पतंति**'। अन्धे कूप में गिरता है। श्रावकाचार से विरुद्ध की बात की। पहले श्रावकाचार कहा, यह श्रावकाचार से विरुद्ध बात है। जिसको सच्चा श्रावकाचार नहीं है, वह विपरीत मार्ग पर चलकर अन्ध कूप में गिरेगा। ...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)